'क्या अँग्रेज़ी भारत के भविष्य की भाषा है?'
पेगी मोहन के लेख पर टिप्पणियाँ

टी. विजयेन्द्र

यह लेख *संदर्भ* अंक-145 (मार्च-अप्रैल, 2023) में प्रकाशित पैगी मोहन के लेख और अंक-146 (मई-जून, 2023) में प्रकाशित हरजिंदर सिंह 'लाल्टू' के लेख पर टिप्पणी है।

पेगी के लेख की अन्तर्निहित धारणा यह है कि चूँकि भारत एक राष्ट्र है इसलिए उसकी एक 'राष्ट्रीय' भाषा है। हिन्दी को 'राष्ट्रीय' भाषा बनाने की परियोजना विफल हो चुकी है और अँग्रेज़ी उसकी जगह ले रही है।

इस धारणा के साथ कई समस्याएँ हैं। जैसा कि लाल्टू ने संकेत किया है, 1947 में भी यह बात स्पष्ट नहीं थी कि इस उपमहाद्वीप के कौन-से हिस्से हिन्दुस्तान में शामिल होंगे। एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान 'राष्ट्रीयतावादी' आन्दोलन के कुछ धड़ों की निर्मिति था। इस निर्मिति का एक पहलू यह था कि हिन्दुस्तान का बूर्ज़्वा वर्ग, जो खुद को हिन्दुस्तान के नए शासक वर्ग के रूप में देखता था, इसे अपने लिए एक 'एकीकृत सुरक्षित' बाज़ार मानता था। दरअसल, पाकिस्तान बनाए जाने की एक मुख्य वजह इस मुल्क की संघीय संरचना पर उनका बल था जो कि हिन्दुस्तान के बूर्ज़्वा वर्ग को स्वीकार नहीं था।

दक्षिण एशिया की वास्तविकता उसका 'संघीय' होना है। वह काफी कुछ यूरोप की तरह राष्ट्रों का एक समुच्चय है। इसमें अनेक मज़बूत

राष्ट्रों का वजूद है जिनकी पर्याप्त सुचारु रूप से विकसित अपनी भाषाएँ हैं। वे मरने नहीं जा रही हैं! हिन्दुस्तान के राज्यतंत्र पर संघीय शक्तियों और एकत्ववादी शक्तियों के बीच के इस तनाव की प्रधानता है। उदाहरण के लिए, चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने भाषायी राज्यों का विरोध किया था। उनका कहना था कि हमें सिर्फ सीमा-रेखाएँ खींच देनी चाहिए, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया है! जबकि हम सब जानते हैं कि भाषायी स्वायत्तता का आन्दोलन हिन्दुस्तान के सर्वाधिक सशक्त आन्दोलनों में से एक है। किसी भी समय में तकरीबन दस ऐसे क्षेत्र होते हैं जो भाषा के आधार पर स्वतंत्र राज्य की माँग कर रहे होते हैं!

ज़्यादातर हिन्दुस्तानी अगर बहुभाषी नहीं हैं, तो कम-से-कम द्विभाषी तो हैं ही। सारे आदिवासी द्विभाषी हैं। पण्डित रघुनाथ मुर्मू जैसा दक्षिण झारखण्ड का आदिवासी बौद्धिक सात भाषाएँ आसानी-से जानता है - हो, सन्थाली, मुण्डारी, नागपुरिया, उड़िया, बांग्ला और हिन्दी! सामान्यत: कम शक्तिशाली भाषायी समुदाय अधिक शक्तिशाली भाषायी समुदाय की भाषा सीख लेता है। इसी तर्क से उड़िया लोग बांग्ला सीख लेते हैं; मलयाली तमिल सीख लेते हैं और कन्नड़ लोग मराठी सीख लेते हैं! बेंगलुरु जैसे शहर में ज़्यादातर ऑटो ड्राइवरों की पहुँच अँग्रेज़ी समेत 4 से 6 भाषाओं तक होती है!

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अँग्रेज़ी हिन्दुस्तान में शक्तिशाली लोगों की भाषा है। हिन्दुस्तान में जिन लोगों की पहुँच अँग्रेज़ी तक होती है, उनके लिए 'प्रगति' के कई दरवाज़े खुल जाते हैं। लेकिन यह मानना गलत है कि हिन्दुस्तान में हर आदमी की इस तरह की लालसाएँ होती हैं। यहाँ तक कि जिन लोगों की ऐसी लालसाएँ होती भी हैं, वे भी अपनी भाषाओं तक अपनी पहुँच को तजने को तैयार नहीं होते। महानगरों तक में, ज़्यादातर आदान-प्रदान भारतीय भाषाओं में ही होता है - स्थानीय और हिन्दी के कुछ अन्य रूपान्तरों में (जिनमें उर्दू, कलकतिया हिन्दी, बम्बइया हिन्दी और दखिनी शामिल हैं)। बहुत-सी भाषाएँ बाज़ारपरक अर्थव्यवस्था तक में भी फल-फूल रही हैं - पुस्तकों, संगीत, फिल्मों, टीवी, सोशल मीडिया आदि में। कम्प्यूटर और स्मार्ट फोन के ई-फॉर्मेट्स में कई हिन्दुस्तानी भाषाएँ और लिपियाँ उपलब्ध हैं। इनमें सन्थाली और हो जैसी आदिवासी भाषाएँ तो शामिल हैं ही, हो सकता है और भी कई भाषाएँ एवं लिपियाँ हों। जिस किसी भी हद तक हम भविष्य का पूर्वानुमान कर सकते हैं, उसमें किसी भी सूरत में हिन्दुस्तानी भाषाएँ मरने वाली नहीं हैं!

भाषाएँ मरती हैं। पेगी मोहन भाषाओं के जन्म (क्रिओल) और मृत्यु

(त्रिनिदाद में भोजपुरी) की अध्येता हैं। बहुत छोटे-से समुदाय द्वारा बोली जाने वाली कुछ भाषाएँ मर चुकी हैं और मरती रहेंगी। भाषाएँ तब मरती हैं जब उन्हें बोलने वाला समुदाय भारी तनाव की स्थिति में होता है। हिन्दुस्तान के मामले में ऐसा नहीं है।

भाषा के कई उपयोग होते हैं जैसा कि लाल्टू ने ठीक ही उल्लेख किया है। यह महज़ व्यापारिक लेन-देन या विज्ञान और टेक्नोलॉजी तक सीमित नहीं है। लोगों को रोज़मर्रा ज़िन्दगी में एक या एक से अधिक भाषाओं की कई तरह के आदान-प्रदान के लिए ज़रूरत होती है जिनमें सांस्कृतिक और भावनात्मक ज़रूरतें शामिल हैं। हिन्दुस्तान जैसे बहुभाषायी देश में द्विभाषिकता या बहुभाषिकता आम बात है। लोग अपनी ज़रूरतों के हिसाब से सीखते हैं। और समाज इससे तालमेल बिठाता है तथा नई संस्थाओं का आविर्भाव होता रहता है - उदाहरण के लिए, अँग्रेज़ी और कई अन्य भाषाएँ सीखने के लिए रेपिडेक्स पुस्तक शृंखला, बोलचाल की अँग्रेज़ी के लिए ढेरों कक्षाएँ आदि।

स्कूली शिक्षा में नवाचारी कार्यक्रम भी काफी आम हैं। मैं 50 के दशक में इन्दौर के जिस स्कूल में पढ़ता था, वह कुछ अन्य चीज़ों के साथ-साथ हिन्दी माध्यम का स्कूल था। अँग्रेज़ी एक विषय के रूप में कक्षा-1 से पढ़ाई जाती थी। इसके बाद कक्षा-9 और 10 में विज्ञान के विषय अँग्रेज़ी माध्यम में पढ़ाए जाते थे। आज के दौर को देखें तो मैकमिलन, ऑक्सफोर्ड और ओरिएण्टल ब्लैक स्वान जैसे हिन्दुस्तानी स्कूली प्रकाशन गृहों में हर कक्षा के लिए बहुत बड़ी तादाद में अँग्रेज़ी प्रकाशन उपलब्ध हैं।

हाँ, अँग्रेज़ी महत्वपूर्ण है लेकिन उसी तरह अन्य भारतीय भाषाएँ भी हैं। हम सब जीवित बचे रहेंगे, बहुत-बहुत धन्यवाद पेगी!

टी. विजयेन्द्र: मैसूर में जन्मे, इन्दौर में पले-बढ़े और 1966 में आई.आई.टी., खड़गपुर से बी.टेक. किया। वे 'पीक ऑयल' के क्षेत्र में सक्रिय हैं और पीक ऑयल इंडिया और इकोलॉजाइस के संस्थापक सदस्य हैं। उन्होंने संसाधनों की कमी को लेकर एक किताब, निबन्धों की तीन किताबें, दो कहानी संग्रह, एक उपन्यास और एक आत्मकथा लिखे हैं। **ईमेल:** t.vijayendra@gmail.com

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मदन सोनी: आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय वरिष्ठ हिन्दी लेखक व अनुवादक। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन्होंने उम्बर्तो एको के उपन्यास *द नेम ऑफ दि रोज़*, डैन ब्राउन के उपन्यास *दि द विंची कोड* और युवाल नोआ हरारी की किताब *सेपियन्स: अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ ह्यूमनकाइंड* समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए हैं।

चित्र: पूजा के. मैनन: *एकलव्य*, भोपाल में बतौर जूनियर ग्राफिक डिज़ाइनर काम किया है। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से चित्रकारी कर रही हैं।